R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-22, अङ्क-11 नवम्बर 2022 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख पत्र

मङ्गलायतन

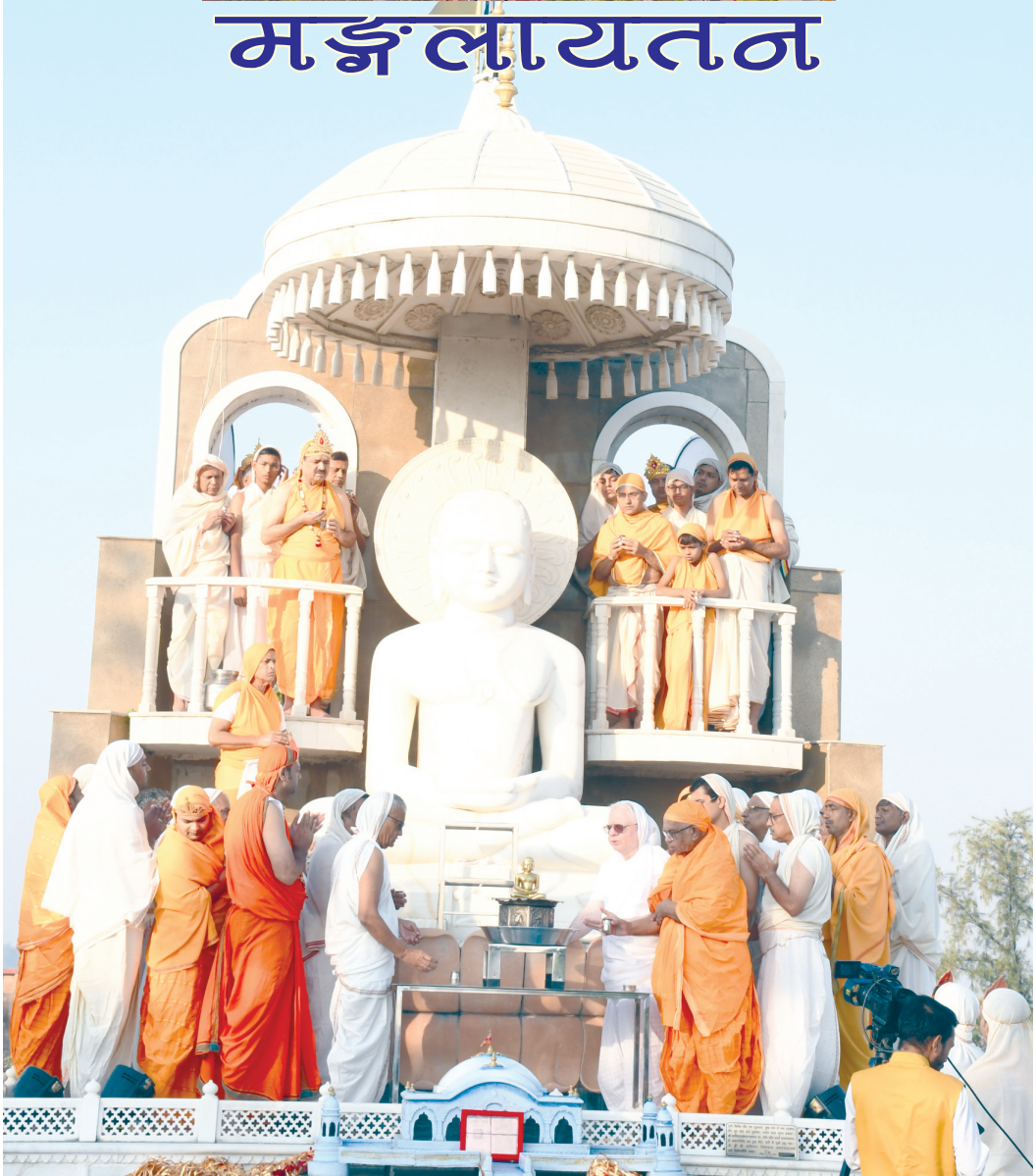

तीर्थधाम मङ्गलायतन में दीपावली पर्व पर आयोजित

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-22, अङ्क-11 (वी.नि.सं. 2549; वि.सं. 2079) नवम्बर 2022

वन्दों अद्‌भुत चन्द्रवीर

वन्दों अद्‌भुत चन्द्रवीर जिन, भविचकोर चित हारी।
चिदानन्द अंबुधि अब उछर्‌यो भव तप नाशन हारी ॥टेक॥

सिद्धारथ नृप कुल नभ मण्डल, खण्डन भ्रम-तम भारी।
परमानन्द जलधि विस्तारन, पाप ताप छय कारी ॥1॥

उदित निरन्तर त्रिभुवन अन्तर, कीरत किरन पसारी।
दोष मलंक कलंक अखकि, मोह राहु निरवारी ॥2॥

कर्मावरण पयोध अरोधित, बोधित शिव मगचारी।
गणधरादि मुनि उड्‌गन सेवन, नित पूनम तिथि धारी ॥3॥

अखिल अलोकाकाश उलंघन, जासु ज्ञान उजयारी।
'दौलत' तनसा कुमुदिनिमोदन, ज्यों चरम जगतारी ॥4॥

— पण्डित दौलतरामजी

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक

डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक

पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल

ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण

बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर

पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग

श्री जैनबहादुर जैन परिवार

कानपुर

हस्ते पण्डित सुधीर शास्त्री

तीर्थधाम मङ्गलायतन

क्या - कहाँ

आत्मविद्या और धर्म की क्रिया	5
जड़ चेतन के	8
ज्ञान	11
श्री समयसार नाटक	15
मोक्षमार्गी श्रमण	20
श्रुत परम्परा एवं	24
कवि परिचय	26
प्रेरक प्रसंग	27
जिस प्रकार-उसी प्रकार	28
समाचार-दर्शन	29

शुल्क :

वार्षिक : 50.00 रुपये

एक प्रति : 04.00 रुपये

आत्मविद्या और धर्म की क्रिया

[बम्बई में पूज्य गुरुदेव का प्रवचन, माघ कृष्णा 3, वीर सं. 2485]

समयसार-कर्ताकर्म अधिकार

देह से भिन्न यह चैतन्यतत्त्व अनादि-अनंत है; अनादि काल से संसार परिभ्रमण करते हुये उसने अपने वास्तविक स्वरूप की पहिचान का सच्चा प्रयत्न कभी क्षणमात्र भी नहीं किया, जो कुछ किया वह बाह्य लक्ष से किया है किन्तु उससे उसे किंचित् शांति-सुख या धर्म की प्राप्ति नहीं हुई। आत्मतत्त्व को जाने बिना अनंत बार अशुभ तथा शुभभाव किये किन्तु उससे संसार भ्रमण का अन्त नहीं आया। यह तो संसार भ्रमण के अंत की बात है।

जगत की अनेक प्रकार की विद्याओं में चैतन्यतत्त्व को जाननेवाली अध्यात्मविद्या ही सर्वोत्कृष्ट विद्या है। लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये विद्या पढ़ने का भाव तो पाप है, और कदाचित् सेवादि का भाव हो तो वह पुण्य है, किन्तु उसके द्वारा संसार-भ्रमण का अंत नहीं होता। चैतन्यतत्त्व को जाननेवाली अध्यात्मविद्या के द्वारा ही संसार भ्रमण का अन्त आता है। वह अध्यात्मविद्या भारत की मूल वस्तु है और उसी की यह बात है। आजकल तो जीवों को अध्यात्मविद्या दुर्लभ हो गई है। एक बार भी यदि अध्यात्मविद्या सीख ले तो जीव के संसार-भ्रमण का अंत आ जाये।

जीवतत्त्व बाह्य संयोगों से भिन्न वस्तु है, बाह्य संयोग उसके आधीन नहीं हैं। देखो, कोई जीव वर्तमान में हिंसा करता हो, झूठ बोलता हो, चोरी करता हो, तथापि उसे उसे बाह्य में सुख-सुविधायें दिखाई देती हैं; तो क्या हिंसादि पाप के फल में वह सुख-सुविधा है ?—नहीं, हिंसादि पापभाव वह कारण और बाह्य अनुकूलता उसका कार्य—ऐसा कारण-कार्य का मेल नहीं होता। हिंसादि भावों से तो नवीन पापबंध होता है, और जो बाह्य अनुकूलता-सुख-सुविधा दिखाई देती है, वह पूर्व के पुण्य का फल है, उसी प्रकार वर्तमान में किसी जीव को दया-भक्ति-न्यायवृत्ति आदि शुभ

परिणाम होने पर भी उसे बाह्य में असुविधा भी दिखाई देती है, उसका कारण ?—वर्तमान में जो पुण्यभाव है, वह कारण और प्रतिकूलता उसका कार्य—ऐसा कारण-कार्य का मेल नहीं है। वर्तमान शुभपरिणाम होने पर भी उसे जो प्रतिकूल संयोग दिखाई देते हैं, वह तो पूर्व के किसी पाप का फल है। इस प्रकार बाह्य संयोग तो पूर्वकालीन पुण्य-पाप के आधीन है; जीव की वर्तमान इच्छा के आधीन नहीं हैं। किन्तु यहाँ अब ऐसा बतलाना है कि जीव का धर्म बाह्य संयोग के आधीन नहीं है। बाह्य में अनुकूल संयोग हो या प्रतिकूल हो, किन्तु चैतन्यस्वभाव में अंतर्मुख एकाग्रता द्वारा सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट करना, सो धर्म की क्रिया है; वह क्रिया जीव की स्वतन्त्र स्वभावभूत क्रिया है। धर्मी जीव ऐसी स्वभाव क्रिया का कर्ता होता है। अज्ञानी जीव आत्मविद्या को भूलकर विकारी क्रिया का कर्ता होता है, वह अधर्म की क्रिया है, उसका यहाँ मोक्षमार्ग में निषेध है।

यह ''समयसार'' शास्त्र अध्यात्मविद्या का उत्कृष्ट शास्त्र है। चैतन्यविद्या ही सच्ची विद्या है; उसमें अनंत अपूर्व अचिंत्य पुरुषार्थ है। चैतन्य विद्या कहो, आत्मविद्या कहो अथवा धर्म की विद्या कहो, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द है तथा वही मोक्ष के कारणरूप क्रिया है। पुण्य की क्रिया है,वह तो विकारी क्रिया है, उसमें आकुलता है, बंधन है, उसका फल संसार है; परंतु अज्ञानीजन बाह्य दृष्टि से पुण्य की क्रिया को ही देखते हैं और उसी को वे मोक्षमार्ग मानते हैं, अंतर की निर्विकारी ज्ञानक्रिया को वे नहीं जानते। जिस प्रकार खूँटे से बँधी हुई भैंस कूदफाँद करती है, तथापि खूँटा तो स्थिर है; वहाँ साधारण जन भैंस की उछलकूद देखकर उसकी शक्ति का माप निकालते हैं, किन्तु स्थिर खूँटे की शक्ति भैंस की अपेक्षा अधिक है—ऐसा विचक्षण पुरुष देखते हैं। उसी प्रकार अज्ञानी जन बाहरी उछलकूद जैसी शारीरिक क्रिया को या शुभपरिणाम को ही देखकर उसे धर्म की क्रिया मानते हैं, किन्तु देह से पार और राग से भी पार ऐसी चैतन्य

क्रिया को वे नहीं देखते। धर्मी जीव अंतर में देह के तथा राग से पार ऐसी स्थिर ज्ञानक्रियारूप परिणमित होते हैं, वह धर्म है। धर्म में अतीन्द्रिय-आनन्द का वेदन है, वह आत्मरस है। अज्ञानी अनादि काल से बाह्य रस में सुख मानकर विकाररस का वेदन कर रहे हैं किन्तु उन्हें अंतर के अतीन्द्रिय आनन्दरूप आत्मरस का वेदन नहीं है। आत्मरस के वेदन बिना अनंत कालीन दु:खरूप क्षुधा का अन्त नहीं आता और आत्मा की शांति प्राप्त नहीं होती। जगत में अनादि काल से चैतन्यविद्या के साधक संत होते आ रहे हैं, वे चैतन्यविद्या द्वारा अपनी पूर्णानन्ददशा को साधकर मुक्त होते हैं। उन्होंने जगत को सच्ची चैतन्यविद्या बतलाई और जो पात्र जीव थे, वे अपनी पात्रतानुसार समझे। जो समझे उन्होंने अपना हित साधन किया, किन्तु दूसरों को समझाने की शक्ति किसी में नहीं है। जगत के जीव स्वाधीन हैं, कोई उन्हें परिभ्रमण कराये अथवा उबार ले - ऐसी पराधीनता नहीं है। भाई! ऐसा मनुष्य अवतार पाकर अपनी आत्मविद्या सीख कि जिस विद्या से तेरा जहाज भवसागर से पार हो जाये। बाह्य क्रियाएँ तो तुझसे भिन्न हैं और रागादि विकारी क्रियाओं में भी तेरी शांति नहीं है। तेरी शांति तेरी चैतन्यक्रिया में है, इसलिये तू अपने चिदानन्दस्वभाव को पहिचान। अपने आत्मा को समझने की शक्ति तुझमें न हो, यह कैसे हो सकता है ? तुझमें वह शक्ति है और उसे जानकर ही संत तुझे उसका उपदेश देते हैं, इसलिये हे भाई! ऐसा दुर्लभ मनुष्य अवतार प्राप्त किया तो उसमें सत्समागम से अपनी आत्मशक्ति का विश्वास करके, आत्मा को समझने का उद्यम कर.... चैतन्यविद्या द्वारा आत्मस्वरूप को समझने से भवभ्रमण का अंत आयेगा और अपूर्व अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होगी। अंतर की ऐसी आत्मविद्या ही धर्म की क्रिया है; वही मोक्ष का कारण है; मोक्ष के लिये भगवान ने उस क्रिया का उपदेश दिया है और यह क्रिया की शुरुआत गृहस्थदशा में भी हो सकती है।

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -16, अंक-1

जड़ चेतन के
भिन्न-भिन्न स्वभाव की घोषणा

[प्रवचनसार गाथा 183-85 के प्रवचनों से]

प्रश्न (1) – मोक्ष का कारण क्या है ?

उत्तर – स्वद्रव्य में प्रवृत्ति, सो मोक्ष का कारण है।

प्रश्न (2) – बंध का कारण क्या है ?

उत्तर – परद्रव्य में प्रवृत्ति, सो बंध का कारण है।

प्रश्न (3) – जीव की स्वद्रव्य में प्रवृत्ति कब तक होती है ?

उत्तर – जब स्व-पर के विभाग का ज्ञान करे, तभी स्वद्रव्य में प्रवृत्ति होती है।

प्रश्न (4) – जीव को परद्रव्य में प्रवृत्ति का कारण क्या है ?

उत्तर – स्व-पर के विभाग का अज्ञान, वह परद्रव्य में प्रवृत्ति का कारण है।

प्रश्न (5) – परद्रव्य में प्रवृत्ति का अर्थ क्या ?

उत्तर – परद्रव्य को अपना मानकर उसमें वर्तन करना, सो परद्रव्य में प्रवृत्ति है।

प्रश्न (6) – कौन सा जीव परद्रव्य को अपना मानता है ?

उत्तर – जो जीव स्व-पर के भिन्न-भिन्न स्वभाव को नहीं जानता, वही मोह के कारण शरीरादि परद्रव्य को अपना मानता है।

प्रश्न (7) – स्वद्रव्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर – अपने अनुभव में आनेवाली चेतना, वह स्वद्रव्य का लक्षण है।

प्रश्न (8) – स्वद्रव्य क्या और परद्रव्य क्या ?

उत्तर – चेतना लक्षणवाला अपना एक आत्मा ही स्वद्रव्य है, शेष अन्य जीव अथवा शरीरादि समस्त पदार्थ इस आत्मा के लिये परद्रव्य हैं।

प्रश्न (9) – आत्मा कर्त्ता है ?

उत्तर – हाँ, आत्मा कर्त्ता है।

प्रश्न (10) – आत्मा किसका कर्त्ता है ?

उत्तर – अपने भाव को करता हुआ आत्मा वास्तव में अपने भाव का ही कर्त्ता है।

प्रश्न (11) – आत्मा, पुद्गल का कर्त्ता है या नहीं ?

उत्तर – नहीं, आत्मा किसी भी पुद्गलमय भाव का (शरीर–मन–वाणी–कर्म आदि का) कर्त्ता नहीं है।

प्रश्न (12) – आत्मा अपने भावों को ही क्यों करता है ?

उत्तर – क्योंकि वे भाव उसका स्व–धर्म होने से आत्मा को उसरूप होने की शक्ति की संभावना है; इसलिये स्वतंत्ररूप से अपने भावों को करता हुआ आत्मा उनका कर्त्ता है।

प्रश्न (13) – सम्यग्दर्शन का कर्त्ता कौन है ?

उत्तर – जीव ही सम्यग्दर्शन का कर्त्ता है, क्योंकि जीव में उसरूप परिणमित होने की शक्ति है, इसलिये वह स्वतंत्ररूप से उसका कर्त्ता है।

प्रश्न (14) – राग का कर्त्ता कौन है ?

उत्तर – राग परिणाम का कर्त्ता भी जीव ही है, क्योंकि जीव में उसरूप परिणमित होने की शक्ति की संभावना है।

प्रश्न (15) – आत्मा, पुद्गल के भावों को क्यों नहीं करता ?

उत्तर – कभी भी कर सकता नहीं क्योंकि वे पर के धर्म हैं, आत्मा के धर्म नहीं हैं, इसलिए आत्मा को उनरूप होने की शक्ति की संभावना नहीं है, इसलिये आत्मा, पुद्गल के किन्हीं भी भावों को नहीं करता।

प्रश्न (16) – आत्मा, शरीर की क्रिया का कर्त्ता क्यों नहीं है ?

उत्तर – क्योंकि शरीर की क्रिया पुद्गल का धर्म है, आत्मा में उसरूप होने की शक्ति का अभाव है, इसलिए आत्मा उसका कर्त्ता नहीं है।

प्रश्न (17) – आत्मा, वचन का कर्त्ता क्यों नहीं है ?

उत्तर – क्योंकि वचन तो पुद्गल का धर्म है, आत्मा में वचनरूप होने की शक्ति की संभावना नहीं है, इसलिये आत्मा उसका कर्त्ता नहीं है। स्वतंत्र निमित्त-नैमित्तिक संबंध का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार कर्त्ता का कथन हो किन्तु यह उपचार मात्र कथन है।

प्रश्न (18) – संतों ने किसकी घोषणा की है ?

उत्तर – संतों ने जड़-चेतन के भिन्न-भिन्न स्वभाव की घोषणा की है।

प्रश्न (19) – आत्मा असद्भूत व्यवहारनय से तो परद्रव्य का ग्रहण-त्याग करता है या नहीं ?

उत्तर – नहीं, आत्मा किसी भी प्रकार परद्रव्य के ग्रहण-त्याग से रहित है, इसलिये ज्ञानी या अज्ञानी कोई भी आत्मा, परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का कर्त्ता नहीं है।

[जो व्यवहारनय से दूसरे द्रव्य को कर्त्ता भोक्ता मान लेता है, वह दो द्रव्य पृथक् नहीं मानते और व्यवहार का अर्थ भी नहीं समझते।]

(20) प्रश्न – यह जानने में धर्म कहाँ आया ?

उत्तर – स्वद्रव्य और परद्रव्य दोनों को भिन्न-भिन्न जानकर, परद्रव्य का किंचित् ग्रहण-त्याग मेरे आत्मा में नहीं है—ऐसा बराबर निर्णय करने से जीव, परद्रव्यों से निरपेक्ष होकर अपने स्वद्रव्य में प्रवृत्त होता है; – वह स्वद्रव्यप्रवृत्ति, सो धर्म है। *साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -16, अंक-1*

मुनिवरों को बाह्य विषयों की आसक्ति नहीं

जिस प्रकार घोर निद्रा में सोते हुए को आसपास की दुनिया का भान नहीं रहता, **उसी प्रकार चैतन्य की अत्यन्त शान्ति में स्थिर हुए मुनिवरों को जगत के बाह्य विषयों में किञ्चित् भी आसक्ति नहीं होती;** भीतर स्वरूप की लीनता में से बाहर निकलना जरा भी अच्छा नहीं लगता; आसपास जङ्गल के बाघ और सिंह दहाड़ रहे हों, तथापि उनसे जरा भी नहीं डरते या स्वरूप की स्थिरता से किञ्चित् भी चलायमान नहीं होते। *(- गुरुदेवश्री के वचनामृत, 211, पृष्ठ 128)*

ज्ञान

[श्री समयसार-सर्व विशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचनों से]

'मैं ज्ञान हूँ, पर का कर्तृत्व मुझमें नहीं है'—ऐसे अकर्ताभाव द्वारा ज्ञानी-संतों ने समस्त परद्रव्यों की ओर से अपनी परिणति को समेट लिया है और उसे निजज्ञान में लगाया है। अहा! अनंत पदार्थों के कर्तृत्व का बोझ सिर से उतार डाला... कितना हलकापन!!

भाई, जीवन में ऐसे ज्ञान के संस्कार डाल तो वे तुझे शरणरूप होंगे, अन्य कोई शरण नहीं होगा। जीवन में भिन्न ज्ञान की भावना भायी होगी तो शरीर छूटते समय ज्ञान दबेगा नहीं; 'मैं तो ज्ञान हूँ'—ऐसी पुकार करता हुआ आत्मा ज्ञान के गहरे संस्कार परभव में भी साथ ले जायेगा। जिसने पहले से भावना भायी होगी, उसी को वह ठीक समय पर काम आयेगी।

ज्ञानी जानता है कि मेरा कार्य पर में नहीं है, पर के कार्य में, मैं नहीं हूँ। पर का कार्य मुझमें नहीं है और मेरे कार्य में पर नहीं है। मैं पर को जानता हूँ और परज्ञेय ज्ञान में ज्ञात होते हैं, तथापि मुझमें पर का प्रवेश नहीं है और पर में मेरा प्रवेश नहीं है। सर्व द्रव्य दूसरे द्रव्यों के बाहर ही लौटते हैं; कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्य में प्रवेश नहीं करता। भाई, तेरे ज्ञान में पर का प्रवेश ही नहीं है, वहाँ पर तेरा क्या करेगा? जिसमें पर का कभी प्रवेश ही नहीं है, ऐसा तेरा स्वरूप, उसका निश्चय करके तू निजस्वरूप में ही रह। जगत के सब पदार्थ स्वयं अपने-अपने स्वरूप में रहकर परिणमित हो रहे हैं; अपने स्वरूप से बाहर कोई पदार्थ परिणमित नहीं होता। परमाणु, परमाणु के स्वरूप में परिणमित होता है, सिद्ध, सिद्ध के स्वरूप में परिणमित होते हैं; अनंत परमाणु तथा अनंत सिद्धपरमात्मा एकक्षेत्रावगाहरूप से स्थित हैं, तथापि सिद्ध कभी परमाणुरूप नहीं होते और परमाणु कभी सिद्धरूप नहीं होता। अरे, एक क्षेत्र में अनंत सिद्ध विद्यमान हैं, तथापि एक सिद्ध दूसरे सिद्धरूप कभी नहीं होते, कभी एक-दूसरे में मिल नहीं जाते। इसीप्रकार

अनंत परमाणु एक क्षेत्र में रहने पर भी कोई परमाणु दूसरे परमाणुरूप होकर परिणमित नहीं होता। इस दृष्टांत से जगत के सर्व पदार्थों में भिन्नता समझना। जिसप्रकार जड़ कभी चेतन होकर परिणमित नहीं होता और चेतन कभी जड़रूप होकर परिणमन नहीं करता; उसीप्रकार जगत का कोई पदार्थ कभी अन्य पदार्थरूप होकर परिणमित नहीं होता, स्व-स्वरूप रहकर ही परिणमन करता है।

कोई कहे कि—वस्तु को परिणमित होने की उपाधि कहाँ से लग गई ? यह पर्याय इसे कहाँ से चिपक गई ? तो कहते हैं कि—अरे भाई ! परिणमन या पर्याय कोई उपाधि नहीं है, वह तो वस्तु का स्वभाव ही है; यदि वस्तु परिणमित न हो तो उसका अभाव ही हो जाये। परिणमन और पर्याय तो सिद्ध में भी है; वह तो वस्तु का स्वभाव है; पर्यायरहित वस्तु हो ही नहीं सकती। सिद्ध को जो पर्याय होती है, वह शुद्ध होती है, इसलिये पर्याय स्वयं कोई उपाधि नहीं है, परंतु पर्याय में जो राग-द्वेष-मोहादि विकारभाव जीव करता है, वे स्वभावरूप न होने से उपाधिरूप हैं। रागादि को निकाल देने के लिये कोई पर्याय को ही आत्मा में से निकाल देना चाहे तो पर्याय बिना आत्मा रहेगा ही कहाँ से ? इसलिये पर्याय को वस्तु में से निकाल नहीं देना, परंतु पर्याय को स्वाश्रय की ओर ले जाने से विकारभाव की उपाधि निकल जाती है।

आत्मा का ज्ञान पर को जाने तो उसके कहीं ज्ञान में पर की उपाधि नहीं आ जाती; ज्ञान स्वयं ही वैसे ज्ञाताभावरूप परिणमित होता है। ज्ञान स्वयं ज्ञानरूप परिणमित होता है, वहाँ ज्ञान का ज्ञेय के साथ संबंध कहना, वह व्यवहार है। परमार्थतः ज्ञान का पर के साथ कोई संबंध नहीं है।

भाई, जीवन में ज्ञान के संस्कार डाल तो वे तुझे शरणभूत होंगे; संयोग कहीं तुझे शरणभूत नहीं होंगे। भिन्न ज्ञान की भावना जीवन में भायी होगी तो शरीर छूटते समय ज्ञान दबेगा नहीं— 'मैं तो ज्ञान हूँ'—ऐसी पुकार करता हुआ आत्मा ज्ञान के गहरे संस्कार परभव में भी साथ ले जायेगा। परंतु

जिसने पहले से ही भावना भायी होगी, उसी को ठीक समय पर उसका फल प्राप्त होगा।

मैं ज्ञान हूँ, पर का कर्तृत्व मुझमें नहीं है—ऐसे अकर्ताभाव द्वारा ज्ञानी-संतों ने अनंत परद्रव्यों की ओर से अपनी परिणति को समेट लिया है और उसे निजज्ञान में लगा दिया है। अहा, कितना हलकापन!! अनंत पदार्थों के कर्तृत्व का बोझ सिर से उतार दिया और ज्ञान अत्यंत हलका—निराकुल-शांत हुआ।

ज्ञान में जब परद्रव्य हैं ही नहीं, तो उसे अनुकूलता क्या और प्रतिकूलता क्या? ज्ञान परज्ञेय को जानता है, वहाँ भी ज्ञान तो ज्ञानरूप ही है, ज्ञान ज्ञेयरूप नहीं होता। जैसे—खड़ी (चूना) वह खड़ी रूप से ही (अपनी सफेदी में ही) विस्तार को प्राप्त करती है, खड़ी कहीं दीवाररूप से विस्तार को प्राप्त नहीं करती; खड़ी फैलकर कहीं दीवाररूप नहीं होती; खड़ीरूप ही रहती है; उसीप्रकार ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वह ज्ञानस्वरूप से ही विस्तार प्राप्त करता है, वह कहीं परज्ञेय में विस्तृत नहीं होता; आत्मा विस्तृत होकर कभी परज्ञेय में नहीं जाता, ज्ञानस्वरूप में ही रहता है। कितना स्पष्ट भेदज्ञान!!—ऐसा भेदज्ञान करे तो स्वाश्रय में कितनी शांति का अनुभव हो?

अंतर में ज्ञान ने राग को जाना तो क्या ज्ञान रागरूप हो गया?—नहीं; ज्ञान का विस्तार तो ज्ञानरूप ही है, ज्ञान का विस्तार रागरूप नहीं है। ज्ञान रागरूप हुए बिना ही राग को जानता है, इसलिये ज्ञान राग को जानता है, वह व्यवहार है; ज्ञान ज्ञान ही है, यह निश्चय है। राग को जानते हुए कहीं 'राग का ज्ञान' नहीं है, 'ज्ञान का ही ज्ञान' है। इसप्रकार ज्ञान को सर्व परभावों से भिन्न देखना, वह सम्यग्दर्शन है।

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान पर का तो नहीं है; 'राग का ज्ञान' भी नहीं है और 'ज्ञान का ज्ञान' ऐसा कहना, उसमें भी भेदरूप व्यवहार है; क्योंकि ज्ञान से भिन्न अन्य कोई ज्ञान नहीं कि जिसका यह ज्ञान हो। इसलिये 'ज्ञान का

ज्ञान' ऐसा स्व-स्वामी अंश के भेद करने में भी व्यवहार है, उस व्यवहार से वास्तव में कुछ साध्य नहीं है। इसलिये 'ज्ञान' वह 'ज्ञान' ही है; इसप्रकार एक ज्ञान को ही सर्व भेदभावों से रहित स्वसंवेदन में लेना, सो परमार्थ है।

चेतयिता अर्थात् चेतनेवाला आत्मा, वह ज्ञानगुण से भरपूर पदार्थ है। आत्मा का झण्डा ज्ञान है, ज्ञान झण्डा सदैव परभावों से ऊँचे का ऊँचा, पृथक् का पृथक् रहता है। ऐसे ज्ञान झण्डे को प्रतीति में लेकर ज्ञानी कहते हैं कि 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा।'

यहाँ तात्त्विक संबंध का विचार करने से अर्थात् सच्चे संबंध का विचार करने से चेतयिता को पर के साथ तो कोई संबंध है नहीं, क्योंकि यदि चेतयिता जड़ का हो तो वह स्वयं जड़ हो जाए। तात्त्विक संबंध ऐसा है कि जो जिसका हो, वह वही होता है; ज्ञान आत्मा का है इसलिये ज्ञान, वह आत्मा ही है। उसीप्रकार ज्ञानपर्यायरूप से परिणमित होता हुआ चेतयिता पर को जानते हुए पर का नहीं है परंतु चेतयिता का ही चेतयिता है; अपने सामर्थ्य से सर्व को जाननेरूप परिणमित हुआ, इसलिये लोकालोक का ज्ञाता कहा, वह व्यवहार है; वास्तव में ज्ञाता लोकालोक का नहीं है, ज्ञाता ज्ञाता का ही है—ऐसा भेद भी परमार्थ में नहीं है; 'ज्ञाता है' वह ज्ञाता ही है—यह परमार्थ है।

आत्मा का स्वरूप ज्ञान है और ज्ञान, वह आत्मा है—तात्त्विकदृष्टि से देखने पर ऐसा संबंध जीवंत है; परंतु ज्ञान का पर के साथ कर्ताकर्मपना हो, ऐसा कोई संबंध तत्त्वदृष्टि में जीवंत नहीं है अर्थात् तत्त्वदृष्टिवंत ज्ञानी को पर के साथ कर्ता-कर्मभाव किंचित् भासित नहीं होता। ज्ञान को परज्ञेय के साथ कुछ भी तात्त्विक संबंध नहीं है। यदि पर को जाननेवाली ज्ञानपर्याय पर में चली जाए, तब तो चेतयिता के स्वद्रव्य का ही नाश हो जाये; ज्ञानपर्याय का नाश होने से आत्मा का ही नाश हो जायेगा। ज्ञानपर्याय तो सर्व परद्रव्यों से पृथक् की पृथक् आत्मा में ही तन्मय रहती है। **क्रमशः**

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -22, अंक-3

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

द्वितीय अधिकार

'परमार्थवचनिका' में कहा है न जीवों को आगम पद्धति का व्यवहार तो दिखता है, सुगम लगता है; परन्तु अध्यात्म का तो व्यवहार भी सूक्ष्म पड़ता है –कठिन लगता है। अर्थात् शरीर और राग की क्रियायें सहज लगती है; परन्तु वे उपाय नहीं है।

'एक ब्रह्म नहिं दूसरों' अर्थात् स्वयं एक ब्रह्म है। सभी आत्माएँ एक होकर एक ब्रह्म है– ऐसा नहीं है। ज्ञान के सूर्य आनन्द के सागर पर दृष्टि पड़ने पर जो अनुभव होता है, उसमें अकेला आत्मा ही होता है, अन्य चीज़ नहीं होती– ऐसा कहना है। यह अनुभव ही धर्म है।

कितने ही कहते हैं कि सोनगढ़वालो ने धर्म को बहुत कठिन कर दिया है; परन्तु भाई ! धर्म का स्वरूप यह एक ही है। समकित का एक ही प्रकार है, उसे मँहगा कहो या सस्ता, वह तो जैसा है वैसा है। व्यवहार समकित वह कोई समकित नहीं है।

जिसने धर्म के स्वरूप की बात भी नहीं सुनी हो, विचार भी नहीं किया हो, उसको ऐसे महा–महिमावंत पदार्थ की बात कैसे बैठे ? जैसे पालीताणा में ये बड़े–बड़े मन्दिर बने हैं, इनके दस–दस मन के पत्थर नीचे से ऊपर चढ़ाये हों, तब बने न ! अब यह बात चींटी को कैसे बैठे ? उसीप्रकार जिसका हृदय छोटा है, उसको आत्मा के अनन्त–अनन्त गुणों की शक्ति की बात नहीं बैठती। अहो ! आत्मा में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञानादि गुणों का भण्डार है। जिसके ज्ञान की हद नहीं है –ऐसे स्वभाव वाला तत्त्व (आत्मा) है। वह एक ही दृष्टि में आने पर उसको (दृष्टिवंत को) आत्मा के धर्म का भान होता है।

अब आगे के पद्य में जीव और देह की भिन्नता के लिए दूसरा दृष्टान्त देते हैं–

देह और जीव की भिन्नता पर दृष्टान्त

खांडो कहिये कनककौ, कनक-म्यान-संयोग।
न्यारौ निरखत म्यानसौं, लोह कहैं सब लोग ।।7।।

अर्थः- सोने के म्यान में रखी हुई लोहे की तलवार सोने की कही जाती हैं; परन्तु जब वह लोहे की तलवार सोने के म्यान से अलग की जाती है तब लोग उसे लोहे की ही कहते हैं।

भावार्थः- शरीर और आत्मा एकक्षेत्रावगाह स्थित हैं। सो संसारी जीव भेदविज्ञान के अभाव से शरीर ही को आत्मा समझ जाते हैं। परन्तु जब भेदविज्ञान में उनकी पहिचान की जाती है तब चित्चमत्कार आत्मा जुदा भासने लगता है और शरीर में आत्माबुद्धि हट जाती है ।।7।।

काव्य - 7 पर प्रवचन

सोने की म्यान में रखी हुई लोहे की तलवार को सोने की कहा जाता है; परन्तु जब वह लोहे की तलवार सोने की म्यान में से भिन्न की जाती है, तब लोग उसको लोहे की ही कहते हैं।

म्यान और तलवार अत्यन्त भिन्न है। इसलिए म्यान सोने की होने से कहीं तलवार सोने की नहीं हो जाती है। उसीप्रकार देह और आत्मा अत्यन्त भिन्न है; इसलिए देह जड़ होने से कहीं आत्मा जड़ नहीं हो जाता है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी 'आत्मसिद्धि' में कहते हैं-

'भासित देहाभ्यास से, आतम देह-समान।
पर वे दोनों भिन्न हैं, ज्यौंकि असि और म्यान।।

जैसे तलवार और म्यान भिन्न है; उसीप्रकार देह और आत्मा भिन्न है- ऐसा कहा है उसमें देह के साथ राग-द्वेष के विकल्प भी ले लेना। प्रत्येक विकल्प को कार्माण शरीर में गिन लेना। उनसे भी आत्मा भिन्न है।

दृष्टान्त सिद्धान्त समझने के लिये होता है। दृष्टान्त समझने के लिये दृष्टान्त नहीं है। जैसे तलवार म्यान में होने से तलवार की म्यान कहीं जाती है; परन्तु वे दोनों एक नहीं, किन्तु भिन्न वस्तुयें हैं; उसी प्रकार आत्मा देह के

भीतर होने से देहवाला और विकल्प वाला कहा जाता है; परन्तु आत्मा देह और विकल्प से भिन्न वस्तु है।

देह का कितना भी पालन-पोषण करे; परन्तु स्वयं देह से भिन्न है; इसीकारण तो स्वयं इस देह को छोड़कर चला जाता है। जैसे देह साथ नहीं जाती, उसीप्रकार पुण्य-पाप के विकल्प भी साथ नहीं जाते हैं। विकल्प पलट जाते हैं, क्योंकि वे आत्मा नहीं है।

शरीर और आत्मा एक क्षेत्रावगाहरूप से रहते हैं, इससे संसारी जीव भेदविज्ञान के अभाव से शरीर को ही आत्मा समझ लेता है। मैं शरीर हूँ और राग, पुण्य-पाप, कर्म, व्यवहार आदि मेरा ही है- ऐसा समझता है; परन्तु जब भेदविज्ञान से आत्मा की पहिचान की जाती है तब चित्-चमत्कार आत्मा भिन्न भासित होने लगता है- इसी का नाम धर्म है। राग और शरीर में से आत्म बुद्धि दूर होकर आत्मा में आत्मबुद्धि होवे-चैतन्य भगवान सबसे भिन्न भासने लगे तब सच्चा आत्मदर्शन और आत्मज्ञान कहा जाता है।।7।।

अब इस नाटक समयसार के अजीवद्वार के 7 वें कलश का 8 वाँ पद्य इस प्रकार है :-

जीव और पुद्गल की भिन्नता

वरनादिक पुद्गल-दसा, धरै जीव बहु रूप।
वस्तु विचारत करमसौं, भिन्न एक चिद्रूप।।8।।

अर्थ:- रूप, रस आदि पुद्गल के गुण हैं, इनके निमित्त से जीव अनेक रूप धारण करता है। परन्तु यदि वस्तुस्वरूप का विचार किया जावे तो वह कर्म से बिलकुल भिन्न एक चैतन्यमूर्ति है।

भावार्थ:- अनंत संसार संसरण करता हुआ जीव, नर, नारक आदि जो अनेक पर्यायें प्राप्त करता है वे सब पुद्गलमय हैं और कर्मजनित हैं, यदि वस्तुस्वभाव विचारा जावे तो वे जीव की नहीं हैं, जीव तो शुद्ध, बुद्ध, निर्विकार, देहातीत और चैतन्यमूर्ति है ।।8।।

काव्य - 8 पर प्रवचन

जैसा पूर्व काव्य में कहा था कि म्यान सोने की होने से तलवार को भी सोने की कहा जाता है; परन्तु तलवार तो लोहे की है; उसीप्रकार रूप, रंग, गंध आदि पुद्गल की दशाओं को व्यवहार से जीव की कहा जाता है; परन्तु वास्तव में तो वह पुद्गल की दशायें हैं। आत्मा को शरीरादि जड़वाला कहना अथवा पुण्य-पाप आदि के विकल्पवाला कहना अथवा गुणस्थान मार्गणास्थान आदि वाला कहना मात्र व्यवहार है। व्यवहार से पुद्गल की दशाओं को जीव की दशा कहा जाता है।

'धरै जीव बहुरूप।' वस्तुतः अजीव में जीव नहीं हैं और जीव में अजीव नहीं है। पुण्य-पाप के शुभ-अशुभ भाव भी वस्तुतः तो पुद्गल के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ पुद्गल है, जीव नहीं। राग-द्वेष आदि के कारण जीव की दशा में मेल (मलिनता) दिखता है वह भी जीव का स्वभाव नहीं है, इसलिए उसको आत्मा नहीं कहते हैं। तो भी व्यवहार से आत्मा को भेदवाला, रागवाला और शरीरवाला कहा जाता है। इससे जीव अनेक रूप धरता है यह भी कहा जाता है।

'वस्तु विचारत करम सौं' -भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा फरमाते हैं। उस स्वरूप को देखने पर आत्मा पुद्गल के भावों से अत्यत्न भिन्न एक चैतन्यमूर्ति है। विज्ञानघन आत्मा कर्म से और कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुए विकारों से, कर्म के निमित्त से अवस्था में पड़नेवाले भेदों से तथा कर्म के निमित्त से प्राप्त संयोगों से अत्यन्त भिन्न है।

कलश में तो इतना अधिक ज़ोर है कि 'निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य'। एक विज्ञानघन चैतन्य के सिवाय समस्त भेद एक पुद्गल के जानो। भेद में, राग में और निमित्त में आत्मा की बिलकुल अपेक्षा नहीं है।

भाई! वास्तविक आत्मा किसको कहना और किसको जानने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान होता है -इसकी खबर बिना कभी धर्म नहीं हो सकता है। धर्म के नाम पर भूल करके तू अनादिकाल से परिभ्रमण कर रहा है। अपनी

भूल के कारण ही परिभ्रमण नहीं मिटता है। विज्ञानघन एक चिद्रूप से (भिन्न) सब अन्य है इस बात का इसको पता नहीं है। आत्मा सबसे भिन्न एक विज्ञानघन चैतन्य है, उसकी दृष्टि करने से धर्म होता है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि राग की क्रिया तो पुद्गल है। उससे धर्म नहीं होता है।

श्रोता:- राग को पुद्गल क्यों कहते हो यही समझ में नहीं आता ?

पूज्य गुरुदेवश्री:- राग है वह वर्ण, गंधवाला पुद्गल नहीं, किन्तु राग एकरूप चैतन्यस्वरूप से भिन्न है, इसलिए उसको अचेतन अर्थात् पुद्गल कहते हैं। यहाँ तो एकरूप चैतन्य वह जीव और अन्य सब अजीव हैं- ऐसे दो ही भेद किये हैं।

अजीव भी एक वस्तु है। अजीव अर्थात् कुछ है ही नहीं ऐसा नहीं है। **'ब्रह्म सत् जगत मिथ्या'** जैसी बात नहीं है। ब्रह्म भी है और जगत भी है; परन्तु ब्रह्म में जगत नहीं और जगत में ब्रह्म नहीं है- ऐसा कहना है।

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में विराजते हों और उनकी भक्ति का भाव आवे, उसको भगवान कहते हैं कि पुद्गल का भाव है, तेरा स्वभाव भाव नहीं। जो तेरा भाव हो, वह तुझसे भिन्न नहीं पड़ सकता और जो भिन्न पड़ जाये, वह तेरा भाव नहीं है। जैसे आत्मा राग और पर की अपेक्षा रहित स्वत: सिद्ध तत्त्व है, वैसे ही राग-द्वेष आदि के भाव आत्मा की अपेक्षा रहित अकेले पुद्गल के भाव हैं। उनको किसी पर की अपेक्षा नहीं है।

'निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य' -शरीर, कर्म और पुण्य-पाप, दया, दान आदि के भाव तथा गुणस्थानादि भेदों को चैतन्य स्वभाव की बिलकुल अपेक्षा नहीं है। वे आत्मा की अपेक्षा बिना, अकेले पुद्गल से हुए भाव हैं। अरे! जैन धर्म में जन्मे होने पर भी (सम्प्रदाय के) बाड़े में रहे हुए जीवों को यह तत्त्व सुनने को नहीं मिलता और छहकाय की दया पालने में, व्रतादि करने में धर्म मानने में उनकी जिन्दगी चली जाती है। जीव ने वास्तविक तत्त्व के भान बिना अनन्तकाल में अनन्त क्रिया की है; परन्तु वस्तु हाथ में नहीं आयी है, उसीतरह यह जिन्दगी भी तत्त्व की दृष्टि बिना चली जाती है। क्रमश:

शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी

मोक्षमार्गी श्रमण

शुभोपयोगी को भी श्रमण कहा है, किन्तु शुभोपयोग वह धर्म नहीं है।

[प्रवचनसार गाथा २४५ के प्रवचन से]

प्रश्न—मोक्षमार्गी श्रमण कैसे हैं ?

उत्तर—जिन्होंने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक उसमें लीनता प्रगट की है, अर्थात् एकाग्रता प्रगट की है, वे श्रमण हैं। वे श्रमण शुद्धोपयोगी होते हैं।

प्रश्न—उन श्रमण को शुभोपयोग होता है या नहीं होता ?

उत्तर—वे श्रमण जब शुद्धोपयोग भूमिका में लीन नहीं रह पाते, तब उन्हें शुभोपयोग भी होता है।

प्रश्न—शुद्धोपयोगी भी श्रमण हैं और शुभोपयोगी भी श्रमण हैं—ऐसा कहा है; इसलिए जिन्हें-जिन्हें शुभोपयोग हो, वे सब श्रमण हैं - यह बात ठीक है ?

उत्तर—नहीं; यहाँ अकेले शुभोपयोग की बात नहीं है। जिसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के उपरान्त अत्यन्त स्वरूप-लीनता प्रगट हुई है—ऐसा जीव जब शुद्धोपयोग में स्थिर नहीं रह सकता, तब शुभोपयोग में वर्तता है; उसे श्रमण कहा है; परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट नहीं हुआ है और शुभराग को ही धर्म मानकर उसी में वर्तता है—ऐसे शुभोपयोगी को श्रमण नहीं कहते; जो शुभराग को धर्म समझते हैं, उन्हें श्रमणपना तो अत्यन्त दूर रहा, सम्यग्दर्शन भी उन्हें नहीं है, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं।

प्रश्न—सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक की चारित्र दशावाले शुभोपयोगी श्रमण को जो शुभराग है, वह तो धर्म है न ?

उत्तर—नहीं; शुभोपयोगी श्रमण को जो शुभराग है, वह भी आस्रव ही है, वह धर्म नहीं है।

प्रश्न—तो धर्म क्या है ?

उत्तर—धर्म तो शुद्ध आत्मपरिणति है; जितनी वीतरागी शुद्ध परिणति है, उतना धर्म है और उतना ही मोक्षमार्ग है।

प्रश्न—शुद्धोपयोगी जीव कैसा है ?

उत्तर—शुद्धोपयोगी जीव निरास्रव है, वह साक्षात् श्रमण है; वह मोक्षमार्ग में अग्रसर है-प्रधान है।

प्रश्न—शुभोपयोगी श्रमण कैसा है ?

उत्तर—शुभोपयोगी श्रमण आस्रवसहित है, और उन्हें मोक्षमार्ग में पीछे से (अर्थात् गौणरूप से) लिया गया है।

प्रश्न—जिन्हें पीछे से गौणरूप से लिया गया है—ऐसे शुभोपयोगी श्रमण कैसे हैं ?

उत्तर—वे शुद्धोपयोग भूमिका के 'उपकण्ठ' पर स्थित हैं, शुद्धोपयोग के पड़ोस में हैं।

प्रश्न—शुद्धोपयोग के उपकण्ठ पर स्थित हैं—इसका क्या अर्थ ?

उत्तर—उन शुभोपयोगी श्रमण को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के उपरान्त चारित्रदशा भी प्रगट हुई है। जब शुद्धोपयोग में एकाग्र नहीं रह सकते, तब उन्हें शुभोपयोग होता है; किन्तु उस शुभोपयोग को वे धर्म नहीं मानते; अल्प काल में ही उस शुभ को छेदकर शुद्धोपयोग में स्थिर होंगे; इसलिए उन शुभोपयोगी श्रमण को शुद्धोपयोग के उपकण्ठ पर (किनारे पर) स्थित कहा है।

प्रश्न—अज्ञानी को भी शुभोपयोग होता है, तो उसे शुद्धोपयोग के उपकण्ठ पर (किनारे पर) क्यों नहीं कहा जाता ?

उत्तर—क्योंकि वह अज्ञानी तो शुभोपयोग को ही धर्म मानकर (अथवा उसे धर्म का सच्चा साधन मानकर) उस शुभराग में ही निमग्न हैं; वे शुभ से पार ऐसी शुद्ध भूमिका को जानते ही नहीं हैं; शुभ में ही अटक रहे हैं, इसलिए उन्हें शुद्धोपयोग के उपकण्ठ पर स्थित नहीं कहा जाता। उन्हें

शुद्धोपयोग निकट नहीं किन्तु दूरातिदूर है। शुद्धोपयोग के उपकण्ठ पर तो उन्हीं को कहा जाता है कि जिन्हें उसका भान हो और निकट भविष्य में ही वह प्रगट होना हो।

प्रश्न—शुभोपयोग धर्म है या नहीं ?

उत्तर—नहीं; शुभोपयोग धर्म नहीं है।

प्रश्न—यदि शुभोपयोग धर्म नहीं है तो धर्मरूप परिणमित श्रमणों को भी वह शुभोपयोग क्यों होता है ?

उत्तर—शुभोपयोग स्वयं धर्म नहीं है, तथापि उसे धर्म के साथ 'एकार्थ समवाय' है, इसलिये धर्मरूप परिणमित श्रमणों को भी वह शुभोपयोग हो सकता है।

प्रश्न—'एकार्थ समवाय' का अर्थ क्या ?

उत्तर—शुभोपयोग और धर्म—यह दोनों यद्यपि एक ही पदार्थ नहीं हैं, तथापि वे दोनों एक वस्तु में निचली भूमिका में एक साथ रह सकते हैं, इसलिए उनको एकार्थ समवायपना है।

प्रश्न—यदि शुभोपयोग स्वयं धर्म नहीं है, तो फिर शुभोपयोगियों को श्रमण क्यों कहा है ?

उत्तर—उन शुभोपयोगियों को भी धर्म का सद्भाव होने से वे श्रमण हैं। शुभ के कारण नहीं किन्तु उसी समय साथ में वर्तती हुई शुद्ध परिणतिरूप धर्म के कारण उन्हें श्रमणपना है। शुभ के समय जिसे धर्म का सद्भाव नहीं है, वह शुभोपयोगी होने पर भी श्रमण नहीं है।

प्रश्न—शुद्धोपयोगी श्रमण और शुभोपयोगी श्रमण—वे दोनों समान हैं या नहीं ?

उत्तर—नहीं; वे दोनों एक-से समान कोटि के नहीं हैं।

प्रश्न—तो उनमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—यद्यपि सम्यग्दर्शनादि की अपेक्षा से उनमें समानता है, तथापि श्रमण शुद्धोपयोगी हैं वे निरास्रव हैं और जो शुभोपयोगी हैं, वे किंचित्

कषायकण प्रवर्तमान होने के कारण सास्रव ही हैं; इसलिए उन्हें शुद्धोपयोगियों के साथ नहीं लिया जाता, किन्तु पीछे से-गौणरूप से ही लिया जाता है।

प्रश्न—इस बात पर से कौन-सा सिद्धान्त निश्चित होता है ?

उत्तर—इससे यह सिद्धान्त निकलता है कि—शुद्धोपयोग ही मोक्षमार्ग है; वही धर्म है; उसके साथ बीच में शुभोपयोग हो, वह मोक्षमार्ग नहीं है, वह धर्म नहीं है।

प्रश्न—शुद्धोपयोगी श्रमण कैसे हैं ?

उत्तर—वे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेने में एकाग्र हैं।

प्रश्न—शुभोपयोगी श्रमण कैसे हैं ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन-ज्ञान के उपरान्त तीन कषाय के अभावरूप चारित्रदशा श्रामण्य होने पर भी उन्हें अभी किंचित् कषाय वर्तती है, उतना बन्धन भी होता है, इसलिए उस शुभ को बन्ध का ही कारण जानना चाहिये, वह मोक्ष का कारण नहीं है।

प्रश्न—शुद्धोपयोगी मुनि कौन-से गुणस्थान में होते हैं ?

उत्तर—शुद्धोपयोगी मुनि सातवें गुणस्थान में या उससे ऊपर होते हैं।

प्रश्न—शुभोपयोगी मुनि कौन-से गुणस्थान में होते हैं ?

उत्तर—शुभोपयोगी मुनि को छठवाँ गुणस्थान होता है। किन्तु वे मुनि उसी गुणस्थान में अधिक काल तक नहीं रहते; अल्पकाल में ही उस शुभ को तोड़कर शुद्धोपयोग में—सातवें गुणस्थान में आते हैं। यदि अधिक काल तक शुभ में ही बने रहें और शुद्ध में न आवें तो वे मुनिपने से भी भ्रष्ट हो जाते हैं। मुनि को छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान बारम्बार बदलता रहता है... बारम्बार निर्विकल्प होकर शुद्धोपयोग में अतीन्द्रिय आनन्द का साक्षात् वेदन करते हैं।— ऐसी ही मोक्षमार्गी श्रमणों की दशा है।

शुद्धोपयोगी साक्षात् मोक्षमार्गी श्रमण—
भगवन्तों को नमस्कार हो!

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

यथानुमार्ग—यथावस्थित जीवादि पदार्थ जिसके द्वारा 'अनुमृग्यन्ते' अर्थात् अन्वेषित किए जाते हैं, वह श्रुतज्ञान यथानुमार्ग कहलाता है।

पूर्व—लोक के समान अनादि होने से श्रुत पूर्व कहलाता है।

यथानुपूर्व—यथानुपूर्वी और यथानुपरिपाटी—ये एकार्थवाची शब्द हैं। इसमें होनेवाला श्रुतज्ञान या द्रव्यश्रुत यथानुपूर्व कहलाता है। सब पुरुष व्यक्तियों में स्थित श्रुतज्ञान एवं द्रव्यश्रुत यथानुपरिपाटी सदा अवस्थित है।

पूर्वातिपूर्व—बहुत पूर्व वस्तुओं में यह श्रुतज्ञान अतीव पूर्व है, इसलिए श्रुतज्ञान पूर्वातिपूर्व कहलाता है।

प्रश्न—इसे अतिपूर्वता किस कारण से प्राप्त है ?

उत्तर—क्योंकि प्रमाण के बिना शेष वस्तु पूर्वों का ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए इसे अतिपूर्व कहा है।

इस प्रकार श्रुतज्ञान के इकतालीस पर्याय शब्दों का वर्णन पूर्ण हुआ।

आगम में वर्णित स्वाध्याय का स्वरूप

मनुष्य का जीवन जिनवाणी के पठन-पाठन अर्थात् स्वाध्याय तप से सफल समझा जाता है और '**सु**' सुष्ठु-भलीभाँति, '**आङ्**' मर्यादा के साथ अध्ययन करना स्वाध्याय है। '**स्वस्य अध्ययनं स्वाध्यायः**' अपने आपका (आत्मा) अध्ययन करना ही वास्तव में स्वाध्याय है। अर्थात् स्व के मनन-चिन्तन में उपयोग को लगाना ही स्वाध्याय है।

इसका तात्पर्य इस प्रकार भी समझ सकते हैं—

स्वाध्याय अर्थात् 'स्व' का—आत्मा का विज्ञान।

स्व+अधि+आय=स्वाध्याय। अर्थात् निज के सन्मुख होना।

स्व+अध्याय, अर्थात् निज (आत्मा) का अध्ययन।

'**सुष्ठु अध्ययनं स्वाध्यायः**' अर्थात् सत्साहित्य का श्रेष्ठ प्रकार से अध्ययन करना।

क्योंकि स्वाध्याय का अर्थ केवल किताब, पुस्तकें पढ़ लेना नहीं है। स्वाध्याय का अर्थ है—अपने अन्दर 'स्व' की किताब को पढ़ना। '**स्वस्य स्वस्मिन् अध्यायः स्वाध्यायः**' अर्थात् अपने अन्दर अपना अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। मनुष्य का सर्वप्रथम कर्तव्य यही है कि वह अपने को जाने, अपने को परखे। मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा स्वरूप क्या है ? और मैं क्या कर रहा हूँ, मुझे क्या करना है, मेरा हित किसमें है ?

इन प्रश्नों का उत्तर जिसने जाना-समझा, वस्तुतः उसने ही सब कुछ जान लिया। अपने अध्ययन के सिवा अन्य सब अध्ययन निरर्थक है। जो ग्रन्थ या शास्त्र आत्मा के अनुकूल हैं, जिनमें अन्दर (आत्मा) के शास्त्र का प्रतिबिम्ब है, उनके अध्ययन को लोकभाषा में स्वाध्याय कहा जाता है, परन्तु इसमें स्व का चिन्तन ही मुख्य है।

इस प्रकार यह स्वाध्याय का व्युत्पत्ति परक अर्थ हुआ।

आगम में वर्णित स्वाध्याय का स्वरूप

प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। उन धर्मों को समझने के लिए नयों की आवश्यकता होती है और उन धर्मों का जो सापेक्ष कथन करता है, उसे नय कहते हैं। जिन अध्यात्म में मुख्यरूप से दो प्रकार के नय स्वीकृत हैं—निश्चयनय व व्यवहारनय।

आचार्य अमृतचन्द्र संक्षेप में कहते हैं—

'आत्माश्रितो निश्चयनयः पराश्रितो व्यवहारनयः।'

अर्थात् आत्माश्रित कथन को निश्चय और पराश्रित कथन को व्यवहार कहते हैं।

वस्तु दो प्रकार की नहीं है, अपितु उसका कथन दो प्रकार से किया जा रहा है। स्वाध्याय को परम तप कहा है। उसका ग्रहण कैसे हो ? इसके लिए जिस व्यक्ति की जो अवस्था है, उसे उस प्रकार का कथन किया गया है। आचार्यदेवों ने स्वाध्याय का स्वरूप निश्चय-व्यवहार से स्पष्ट किया है, जो दृष्टव्य है।

क्रमशः

कवि परिचय

सेनापति चामुण्डराय

कन्नड़कांद एवं छन्दाम्बुधि के रचयिता कन्नड़ भाषा में सुप्रसिद्ध जैन कवि राजमल्ल सत्य वाक्य चतुर्थ के शासनकाल में श्रवणबेल गोल की गोम्मटेश प्रतिमा 967 ई. में प्रतिष्ठापित हुई। रक्कसंगम की पुत्री चट्टलदेवी हुम्मच के सांतरवंश के शिलालेखों में देवी की तरह पूजित हुई। गंगवंशी राजमल्ल चतुर्थ के अद्वितीय मंत्री एवं महा सेनापति चामुण्डराय (चाबुण्डराय) थे। डॉ. सालतोर के शब्दों में उनसे बड़ा वीर योद्धा, उनसे बड़ा जिनेन्द्र भक्त और उन जैसा सत्यनिष्ठ सज्जन कर्णाटक देश में दूसरा नहीं हुआ।

अजित सेनाचार्य उनके गुरु थे। वह चामुण्डराय पुराण (कन्नड़) व चरित्रसार (संस्कृत) जैसे विशाल ग्रन्थों का प्रणेता था। गोम्मटसार की वीरमार्तण्डी टीका (कन्नड़) भी चामुण्डराय रचित मानी जाती है। कन्नड़ के महाकवि रन्न का वह प्रश्रयदाता था। चामुण्डराय की प्रेरणा से आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने सुप्रसिद्ध गोम्मटसार, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों की रचना की थी। ब्रह्मक्षत्रीय कुल में उत्पन्न चामुण्डराय महान राजनीतिज्ञ, सुदक्ष सैन्य संचालक, परम स्वामिभक्त था। कन्नड़, संस्कृत व प्राकृत भाषाओं का वह स्वयं निष्णात ज्ञाता था तथा उनके विद्वानों का प्रश्रयदाता था।

अद्‌भुत निर्माणकर्ता और जैनधर्म के प्रभावकों में अग्रिम, महादण्डनायक पद से विभूषित अत्यन्त विरल पुरुष रत्न चामुण्डराय का लाभ गंग नरेशों को उस समय प्राप्त हुआ, जबकि स्वयं उनका भाग्यसूर्य अस्ताचल गामी था। वह राजमल्ल ही नहीं उसके पूर्वज मारसिंह व रक्कसंगम का भी राजमंत्री एवं सेनापति रहा। मारसिंह ने अपने भानजे राष्ट्रकूट इन्द्र चतुर्थ की रक्षा का भार उसे ही सौंपा था। वह अपनी स्नेहमयी जननी का परम भक्त था। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए चामुण्डराय ने 978ई. में गोम्मटेश्वर, 'दक्षिण कुक्कुट जिन' बाहुबली की विशाल प्रतिमा

प्रतिष्ठित कराई थी। चामुण्डराय ने अनेक जिनमन्दिरों, मूर्तियों आदि का निर्माण, जीर्णोद्धार और प्रतिष्ठा कराई थी। श्रवणबेलगोल के चन्द्रगिरि पर्वत पर चामुण्डराय—वसती एक अत्यन्त सुन्दर जिनालय है, जिसका निर्माण भी चामुण्डराय ने कराया था। चामुण्डराय की भार्या अजितादेवी भी धर्मपरायण थी। उनका पुत्र जिनदेवन भी जैन धर्म को समर्पित था।●●

प्रेरक प्रसंग

झूठ और सहायता

बात उन दिनों की है, जब श्री राजगोपालाचार्य सैलम में वकील थे। उनके घर पर एक ब्राह्मण आया तथा जेब कट जाने की बात कहकर सहायता माँगने लगा। उसने अपना नाम हरिहर अय्यर बताया तथा कहा कि यात्रा से लौटते समय मेरी जेब कट गई है। मैं व मेरा परिवार घर पहुँचने की स्थिति में नहीं है। अतः कृपया आप मेरी सहायता कीजिये।

श्री राजगोपालाचार्य ने कहा– अभी तो मैं कोर्ट जा रहा हूँ, समय हो गया है। शाम को आकर मिलना।

यह कहकर उस ब्राह्मण का पूरा नाम–पता लिखकर अपनी जेब में रख लिया। कोर्ट जाकर फोन पर पालघाट स्कूल के प्रिंसिपल से पूछा कि क्या वहाँ हरिहर अय्यर रहते हैं। जवाब मिला कि यहाँ इस नाम का कोई व्यक्ति नहीं रहता है।

श्री राजगोपालाचार्य ने हरिहर अय्यर के नाम का धोखे के कारण वारण्ट जारी करने का हुक्म दिया।

शाम को श्री राजगोपालाचार्य के घर पर आये हुए अय्यर को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। दूसरे दिन कोर्ट में धोखा देने के अपराध में 250 रुपये दण्ड तथा न देने पर छह माह की सजा सुनाई गई। श्री राजगोपालाचार्य ने 250 रुपये देकर उसे छुड़ाया, घर ले गये। भोजन कराया तथा उसके परिवार को खर्च देकर पालघाट भेज दिया।

जीवन भर हरिहर अय्यर उनके इस अपूर्व सद्व्यवहार को न भूला तथा हमेशा के लिए झूठ बोलने छोड़ दिया।

शिक्षा– वात्सल्य पूर्वक ही अनुशासन सिखाया जा सकता है।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– खान में सोने में कीट–कालिमा मिली है, शुद्ध सोने को प्राप्त करने हेतु इनका जानना इनको हटाने के लिए जरूरी है। ग्रहण करने योग्य तो मात्र शुद्ध सोना ही है।

उसी प्रकार– संसार में घूम रहे जीव के साथ भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म आदि रह रहे हैं, इनको हटाने के लिए इनका जानना भी होता है। ग्रहण करने योग्य तो मात्र अपना आत्मा ही है।

जिस प्रकार– आत्मा से रहित शरीर मुर्दा है, मुर्दे का श्रृंगार निरर्थक है।

उसी प्रकार– सम्यग्दर्शन से रहित जीव का जीवन ही नहीं है। मुर्दे समान है। व्रतों आदि द्वारा सजाना निरर्थक ही है।

जिस प्रकार– पानी में देखने पर ऊपर जो तारें होते हैं, वे सब दिख जाते हैं, तारे जल में नहीं हैं, वह तो जल ही की स्वच्छता है।

उसी प्रकार– भगवान आत्मा की निर्मल पर्याय देखने से तीन काल, तीन लोक उसमें ज्ञात हो जाते। उन पदार्थों को देखना नहीं पड़ता।

जिस प्रकार– मिश्री को ग्रहण करने से मिश्री के सर्वगुण में आ जाते है।

उसी प्रकार– जब आत्मा का ग्रहण हो गया तो उसी समय आत्मा के अनन्त गुणों का ग्रहण हो जाता है।

जिस प्रकार– अशुभ छूटकर शुभोपयोग होता है।

उसी प्रकार– शुभोपयोग छूटकर शुद्धोपयोग होता है। इनमें कारण–कार्यपना नहीं है।

जिस प्रकार– नक्षत्रों के गमन का क्रम कभी भी निश्चत क्रम को छोड़कर उल्टा नहीं होता।

उसी प्रकार– द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय का उत्पाद व्ययरूप प्रवाह का क्रम अपने निश्चित क्रम को छोड़कर कभी भी उल्टा सीधा नहीं होता। अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, केवलीज्ञानी भविष्य में होने वाली घटनाओं को जान तो लेते है लेकिन बदल नहीं सकते ।

जिस प्रकार– थर्मामीटर बुखार का नाप बताता है, किन्तु थर्मामीटर में बुखार आता नहीं है।

उसी प्रकार– कर्म विकार का नाप बताते है, कर्मों में विकार होता नहीं।

जिस प्रकार– थर्मामीटर को तोड़ने से बुखार जाता नहीं, बुखार जाने पर थर्मामीटर बुखार दिखाता नहीं।

उसी प्रकार– कर्मों को कोसने से विकार जाता नहीं, विकार के चले जाने पर कर्म विकार दिखाते नहीं, स्वयं दूर हो जाते है।

क्रमशः संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : वीर निर्वाण के अवसर पर दिनांक रविवार, 23 अक्टूबर से गुरुवार, 27 अक्टूबर 2022 तक श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन के संयुक्त तत्त्वावधान में तीर्थधाम मङ्गलायतन में आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ।

दैनिक कार्यक्रमों में प्रात: 5.30 से 6.30 तक प्रौढ़ कक्षा पण्डित सचिन जैन द्वारा, 6.45 से 8.30 तक प्रक्षाल-पूजन-विधान प्राप्त; 9.30 से 10.00 तक पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन; 10.15 से 11.00 पण्डित विमलदादा झांझरी द्वारा नाटक समयसार पर स्वाध्याय तत्पश्चात् 11.00 से 11.45 तक डॉ. संजीव जैन गोधा जयपुर द्वारा ग्रन्थाधिराज समयसार; दोपहर 1.30 से 2.30 तक बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा वाचना; 2.30 से 3.30 तक गोष्ठी 'अनेकान्त स्याद्वाद' व 'दीपावली' विषय पर गोष्ठी का आयोजन व 3.30 से 4.15 तक पण्डित प्रदीप झांझरी द्वारा प्रवचनसार पर स्वाध्याय; सायंकाल 6.00 से 6.45 जिनेन्द्रभक्ति; 6.50 से 7.45 बजे तक पण्डित जे.पी. दोशी द्वारा सर्वज्ञ का स्वरूप; 8.00 से 9.00 डॉ. संजीव गोधा, जयपुर द्वारा श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार के आधार से प्रतिदिन तत्त्वज्ञान की ज्ञानगंगा प्रवाहित हुई। प्रतिदिन रात्रि 9.00 से 9.45 तक अनेक ज्ञानवर्धक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया।

दिनांक 23 अक्टूबर को प्रात: शिविर उद्घाटन समारोह का **ध्वजारोहण** - श्री अनिल जैन श्रीमती ज्योति जैन, उज्जैन; **विधान आमन्त्रण कर्ता** - श्रीमती अर्चना नरेश जैन परिवार, ग्वालियर, मङ्गलार्थी शान्तनु द्वारा एवं **शिविर उद्घाटनकर्ता** डॉ. अशोक जैन, श्री विजय बड़जात्या परिवार इन्दौर के करकमलों द्वारा सानन्द सम्पन्न हुआ। शिविर का परिचय पण्डित अरहन्त झांझरी द्वारा दिया गया।

इस शिक्षण शिविर में देश के अनेकानेक **विद्वान** पण्डित विमलदादा झांझरी, उज्जैन; पण्डित जे.पी. दोशी, मुम्बई; पण्डित प्रदीप झांझरी, सूरत; पण्डित अरहन्त झांझरी, उज्जैन; श्री नगेश जैन, पिड़ावा; डॉ. योगेशचन्द्र जैन, अलीगंज; पण्डित ऋषभ शास्त्री, उस्मानपुर; पण्डित हितेश चोबटिया, मुम्बई; बालब्रह्मचारी सुकुमाल झांझरी, उज्जैन; बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन; ब्रह्मचारिणी पुष्पलता जैन; ब्रह्मचारिणी समताबेन; ब्रह्मचारिणी ज्ञानधाराबेन; ब्रह्मचारिणी जीनलबेन मुम्बई; पण्डित अमित

अरहन्त आदि का मंगल सान्निध्य प्राप्त हुआ। अन्तिम दिन आत्मार्थी कन्या विद्यानिकेतन दिल्ली की छात्राओं ने शिविर में सहभागिता की।

इस शिविर की यह **विशेषता** थी यहाँ प्रतिदिन अलग-अलग विधान श्री सर्वज्ञदेव विधान, श्री मोक्षशास्त्र विधान, श्री समयसार विधान, श्री प्रवचनसार विधान, विधानाचार्य पण्डित संजय शास्त्री जेबर, कोटा; पण्डित दिव्यांशु शास्त्री अलवर; मंगलार्थी सन्देश जैन, दिल्ली; मंगलार्थी समकित जैन द्वारा सम्पन्न कराये गये।

इसी अवसर पर विगत दो वर्ष में आयोजित विज्ञान वाटिका पुष्प क्रमांक 6 व 7 के पुरस्कार वितरण का कार्यक्रम भी प्रथम दिन रखा गया। जिसमें सभी विजेताओं को पुरस्कार दिया गया और पण्डित हितेशभाई चोबटिया द्वारा प्रथम तीन विजेताओं को और तीर्थधाम मङ्गलायतन को 'बोलता हुआ समयसार' की प्रतियाँ विमोचन कराकर भेंट की गयीं और तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रकाशित 'मंगल भक्ति सुमन' का भी विमोचन किया गया। तीर्थधाम मङ्गलायतन का परिचय पण्डित अशोक लुहाड़िया एवं भगवान आदिनाथ विद्यानिकेतन का परिचय डॉ. सचिन्द्र जैन शास्त्री द्वारा दिया गया।

25 अक्टूबर वीर निर्वाण की पावन बेला पर प्रातःकाल श्रीजी की शोभायात्रा सहित तीर्थधाम मङ्गलायतन स्थित कैलाशपर्वत पर कृत्रिम पावापुरी की रचना की गयी और भगवान महावीर के प्रक्षाल पूजन सहित मोक्षकल्याणक भक्ति एवं उत्साहपूर्वक मनाया गया। प्रथम निर्वाण प्रतीक श्रीफल श्री सुनील गाँधी पूना द्वारा समर्पित किया गया। इसी अवसर पर श्री स्वप्निल जैन द्वारा तीर्थधाम मङ्गलायतन के बीस वर्ष पूर्ण होने पर दिनांक 2 फरवरी से 6 फरवरी 2023 तक वार्षिकोत्सव धूमधाम से मनाने की घोषणा की।

इस अवसर पर देश भर के अनेकों साधर्मी भाई-बहिनों में श्री विजय बड़जात्या इन्दौर; श्री महेन्द्रभाई शाह मुम्बई; श्री अखिलेश जैन इन्दौर; डॉ. बाहुबली जैन इन्दौर; डॉ. किरण शाह पूना; श्री सुनील गाँधी पूना; डॉ. बासन्तीबेन मुम्बई; श्री ध्याता बजाज कोटा; श्री नवनीत जैन मेरठ; श्री दिलीपभाई अहमदाबाद; श्री मनोज जैन बंगेला सागर; श्री पी. के. जैन रुड़की; श्री केशवदेव जैन कानपुर; श्री जैनबहादुर जैन कानपुर; श्री अमित जैन दिल्ली (रेलवे); श्री संदीप जैन मेरठ; श्री सिद्धेश जैन मुम्बई आदि विशिष्ट महानुभावों के साथ-साथ सैंकड़ों भव्य जीवों की गरिमामय उपस्थिति रही।

सांस्कृतिक कार्यक्रम—23 अक्टूबर को पण्डित संजय शास्त्री जेबर द्वारा पौराणिक कथा; 24 अक्टूबर को शान्तरस प्रवाह झांझरी परिवार द्वारा; 25 अक्टूबर को भजन संध्या; 26 अक्टूबर को भविष्य (नाटक) मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया।

समापन—27 अक्टूबर को श्री स्वप्निल जैन, श्री अनिल जैन द्वारा सभी विद्वानों व महानुभावों का स्वागत-सत्कार किया गया और पण्डित सुधीर शास्त्री द्वारा आभार प्रदर्शनपूर्वक शिविर समापन की घोषणा की गयी।

इस प्रकार यह शिविर अनेकानेक उपलब्धियों सहित सानन्द सम्पन्न हुआ।

तीर्थधाम मङ्गलायतन में आमन्त्रित विशिष्ट विद्वान

तीर्थधाम मङ्गलायतन में विशेष आमन्त्रण पर पधारे विशिष्ट विद्वान् पण्डित जे.पी. दोशी मुम्बई और डॉ. दीपक जैन 'वैद्य' जयपुर द्वारा भगवान आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों की कक्षाओं का संचालन किया गया। जिसमें जैनभूगोल और जैन सामान्य श्रावकाचार से स्वास्थ्य लाभ विषय पर दोनों समय कक्षाओं का संचालन एवं प्रवचनसार के चरणानुयोग सूचक चूलिका अन्तर्गत उत्सर्ग -अपवाद मार्ग की मैत्री विषय पर स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हुआ।

पण्डित जे.पी. दोशी मुम्बई द्वारा दोनों समय द्रव्य-गुण-पर्याय विषय पर कक्षाओं का लाभ प्राप्त हुआ। एतदर्थ तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार दोनों विद्वानों का हृदय से आभार व्यक्त करता है।

वैराग्य समाचार

करेली : श्री सनमत जैन का शान्तपरिणामोंपूर्वक देह परिवर्तन हो गया है। आप मङ्गलार्थी सुमित जैन के पिताजी थे।

द्रोणगिरि : श्री चन्द्रभान जैन 'नन्ना' घुवारा का शान्तपरिणामोंपूर्वक देह परिवर्तन हो गया है। आप श्री अशोक जैन, रायपुर के पिताजी थे। आप सिद्धायतन के अध्यक्ष तथा पण्डित राजकुमार जैन उदयपुर के ससुर थे।

जैथल : पण्डित धर्मचन्द जैन का शान्तपरिणामोंपूर्वक देह परिवर्तन हो गया है। आप तत्त्वप्रभावना के लिए हमेशा प्रतिबद्ध, चिरयुवा, पूज्य गुरुदेवश्री के तत्त्वज्ञान को समाज में पहुँचानेवाले व्यक्तित्व थे।

बड़नगर : श्री विजय पाटौदी का शान्तपरिणामोंपूर्वक देह परिवर्तन हो गया है। आप उत्साही कार्यकर्ता एवं पूज्य गुरुदेवश्री के भक्त थे।

छिन्दवाड़ा : श्रीमती स्वाति सिंघई का आकस्मिक देह परिवर्तन हो गया है। आप देव-शास्त्र-गुरु के प्रति समर्पित थीं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

अग्रिम आमन्त्रण

अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सूचित करते हुए हर्ष है कि **तीर्थधाम मङ्गलायतन** अपने गौरवपूर्ण इतिहास के साथ 20 वर्ष पूरे करने जा रहा है। ज्ञात हो कि **तीर्थधाम मङ्गलायतन** का भव्य, अद्भुत, विशाल श्री जिनबिम्ब पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव देश-विदेशों से पधारे हजारों मुमुक्षु भाई-बहिनों की उपस्थिति में **दिनांक 31 जनवरी से 06 फरवरी 2003 तक** आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ था।

हमारी भावना यह है जिस प्रकार पंच कल्याणक के समय जो हमने विशेष उत्साह के साथ कार्यक्रम आयोजित किये थे। उनके पुन:स्मरण के लिये **दिनांक 02 फरवरी से 06 फरवरी 2023 तक** समस्त इन्द्र-इन्द्राणी, राजा-रानी एवं प्रमुख पात्रों को हम अभी से आमन्त्रित कर रहे हैं कि वो इस अवसर पर अवश्य पधारें। इस अवसर पर देश के ख्यातिप्राप्त विद्वानों, प्रतिष्ठाचार्य, मुमुक्षु मण्डलों एवं साधर्मी भाई-बहिनों का सान्निध्य प्राप्त होगा।

अत: आपसे अनुरोध है कि तीर्थधाम मङ्गलायतन में पधारने का मानस बना लेवें, जिससे आपके आवास-भोजनादि की समुचित व्यवस्था की जा सके।

सम्पर्कसूत्र : पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800;
अशोक बजाज 9997996346 (ऑफिस) Email : info@mangalayatan.com

तीर्थधाम मङ्गलायतन से षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित

द्वितीय खण्ड खुद्दाबन्ध (क्षुल्लकबन्ध)

सातवीं पुस्तक की वाचना 03 अगस्त 2022 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी भाई-बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन) **षट्खण्डागम (धवलाजी)**

रात्रि 07.30 से 08.30 तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

08.30 से 09.15 तक समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - mang4321 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की सदस्यता स्वीकार करता हूँ और मैं ..... राशि जमा करवाऊँगा / दूँगा।

हस्ताक्षर

- चौथाई ग्रास दान भी अनुकरणीय -

ग्रासस्तदर्धमपि देयमथार्धमेव,
तस्यापि सन्ततमणुव्रतिना यथर्द्धिः।
इच्छानुसाररूपमिह कस्य कदात्र लोके,
द्रव्यं भविष्यति सदुत्तमदानहेतुः॥

अर्थात् गृहस्थियों को अपने धन के अनुसार एक ग्रास अथवा आधा ग्रास अथवा चौथाई ग्रास अवश्य ही दान देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जब मैं लखपति या करोड़पति हो जाऊँगा, तब दान दूँगा; बल्कि जितना धन हमारे पास है, उसी के अनुसार थोड़ा-बहुत दान अवश्य देना चाहिए। - आचार्य पद्मनन्दि : पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, श्लोक 230

यह राशि आप निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	:	SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	RAILWAY ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	:	1825000100065332
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0001000
PAN NO.	:	AABTA0995P

UPI
BHIM UPI Payments Accepted at
SHRI ADINATH KUND KUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST

Account Number : 1825000100065332, IFSC Code: PUNB0001000

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

दिसम्बर 2022 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

2 दिसम्बर – मार्गशीर्ष शुक्ल 10
श्री अरनाथ तप कल्याणक
3 दिसम्बर – मार्गशीर्ष शुक्ल 11
श्री नमिनाथ ज्ञान कल्याणक,
श्री मल्लिनाथ जन्म तप कल्याणक
6 दिसम्बर – मार्गशीर्ष शुक्ल 14
चतुर्दशी, श्री अरनाथ जन्म कल्याणक
7 दिसम्बर – मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा
श्री संभवनाथ तप कल्याणक
8 दिसम्बर – मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा
रोहिणी व्रत
10 दिसम्बर – पौष कृष्ण 2
श्री मल्लिनाथ ज्ञान कल्याणक
12 दिसम्बर – पौष कृष्ण 4 पुष्य नक्षत्र
16 दिसम्बर – पौष कृष्ण 8 **अष्टमी**
19 दिसम्बर – पौष कृष्ण 11
श्री पार्श्वनाथ जन्म-तप कल्याणक
श्री चन्द्रप्रभ जन्म-तप कल्याणक
20 दिसम्बर – पौष कृष्ण 12
त्रिपुष्कर योग
22 दिसम्बर – पौष कृष्ण 14
चतुर्दशी, श्री शीतलनाथ ज्ञान कल्या.
30 दिसम्बर – पौष शुक्ल 8 **अष्टमी**

सम्माननीय पाठक कृपया ध्यान देवें

आपको यदि तीर्थधाम मङ्गलायतन से प्रकाशित मासिक पत्रिका **मङ्गलायतन** यदि नहीं मिल रही / पता बदलना / बन्द करना हो तो आप हमें निम्न फार्म भरकर कृपया अवश्य भेजें।

नाम / पत्रिका ग्राहक संख्या .....

पता .....

.....

.....

मोबा. ..... ई-मेल .....

कृपया निम्न पते पर भेजने का कष्ट करे अथवा whatsapp भी भेज सकते हैं –

सम्पादक, मङ्गलायतन मासिक पत्रिका
तीर्थधाम मङ्गलायतन, आगरा-अलीगढ़ राजमार्ग
सासनी-204216 (हाथरस) उत्तरप्रदेश
whatsapp : 7581060200, 9756633800
Email : info@mangalayatan.com

तीर्थधाम मङ्गलायतन में दीपावली पर्व पर आयोजित

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर की झलकियाँ

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com